भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संग पत्रिका

वर्ष-3, अंक-10	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-20.00
गुरुवार, 18 अक्तु.' 79	मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 2.00

नूतन वर्ष के मंगलदिन.....

नूतन वर्ष का मंगल दिन आ रहा है। प्रतिवर्ष यह मंगल दिन स्वाभाविक आता ही है और हम मनाते आ रहे है.....किन्तु वास्तव में भगवान के प्रत्यक्ष स्वरूप के सम्बन्ध हो जाने के बाद सेवकों के लिये तो प्रतिदिन नूतन वर्ष का मंगल दिन ही है। क्यों? भगवान के स्वरूप का योग होने के बाद निश्चित चैतन्य प्रतिदिन वृद्धिगत होता है- निश्चिंतता बढ़ती ही जाती है। संसार फूल से भी कम वजनदार भारहीन हो जाता है। संसार प्रतिदिन मधुर और अधिक मधुर होता जाता है....दुख और परेशानियाँ कम होते जाते हैं; सुख, शान्ति और आनन्द बढ़ते जाते है। जैसे सूर्योदय होते ही अंधेरा नष्ट हो जाता है जैसे प्रभु का सम्बन्ध होते ही जीव सर्व प्रकार से सुखी होता है।

तो इस के मंगल दिन आप सबकी ओर से महाराज और स्वामी, गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज गुरुहरि योगीजी महाराज, प.पू. काका और प.पू. पप्पाजी के चरणों में यह ही प्रार्थना है कि वे हमारा दिव्य संबंध दृढ़ करा दे और सदा के लिये सर्वांगीण सुख प्रदान करें।

साधु हरिप्रसाद के हार्दिक स्वामिनारायण

❀ ❀ ❀

विज्ञान ने और धर्म ने पूर्व और पश्चिम की सभ्यताओं में परमतत्त्व के अस्तित्व को स्वीकृत किया है। इस परमतत्त्व को कोई ब्रह्म कहता है, कोई अवतार कहता है, कोई शक्ति कहता है, कोई पैगम्बर कहता है। नाम कुछ भी दो किन्तु एक और अद्वितीय सत्ता है और वह अखंडित है, इसमें दोनों सभ्यताओं में तनिक भी शंका नहीं है। इसकी प्राप्ति के लिये सर्वत्र विधविध स्वरूप की भूख है, प्यास है, तमन्ना है, आरजू है। किन्तु वास्तविक दृष्टि से देखें तो इसके प्रागट्य के लिये हमारे जीवन के प्रवाह को द्वंद्वों से परे करना पड़ेगा और वह दिव्यतत्त्व जो मानव रूप में प्रगट हुआ है, मूर्तिमान हुआ उसके साथ एक और अनन्यभाव का सम्बन्ध दृढ़ करना पड़ेगा। इसके लिये यदि तीव्र अभीप्सा होगी, संकल्प होगा,

निश्चय होगा, तो सच्चे सत्पुरुष निश्चित मिल जायेंगे और श्रेयार्थी साधकों को–सत्य शोधकों को निश्चित उनका परिचय भी हो जायगा।

हमारी रीति का ज्ञान, हमारी समझ, साधना या तपश्चर्या यहां बंधनरूप है। किन्तु ऐसे सत्य स्वरूप सन्त की कृपा से जब परम तत्त्व के साथ सम्बन्ध हो जाता है तब बच्चे को जैसे मां का प्रेम मिलता है वैसे आध्यात्मिक संबंध बन जाता है और जब असली पहचान हो जाती है तब अपने अंग के अनुसार कोई अर्जुन के समान सखा भाव से, कोई गोपियों के समान मधुरभाव से या कोई हनुमान जी के समान दासभाव से या किसी अन्य भाव से उस तत्त्व की दृढ़ भक्ति करते हैं।

यह दिव्य तत्त्व व्यक्त भी है और अव्यक्त भी है। किन्तु इसकी सही समझ होगी तो वह 'परात् परः' रहने वाला है और हम उसको जैसे दिव्य मानेंगे ऐसे ही दिव्य हम बनेंगे और इस जीवन में देह रहते हुए सुख, शान्ति और बल उत्तरोत्तर प्राप्त करेंगे। ऐसी प्राप्ति के बाद वासना, इच्छा ग्रन्थि, स्वभाव, प्रकृति आदि नष्ट हो जायेंगे। इन अनिष्ट तत्त्वों के साथ लड़ने के बजाय परमात्मा की शक्ति का आह्वान करना चाहिए, प्रार्थना करनी चाहिए और सन्निष्ठा से और दिल की गहराइयों से उस परमतत्त्व का सहारा लेना चाहिए। तब हमारा घर और समाज दिव्य बन जायेंगे, रागद्वेष रहित बन जायेंगे और वे सच्चे सुख, शान्ति और आनंद के निधान बनेंगे।

प.पू. योगीबापा ऐसी विरासत हमारे लिये छोड़ गये हैं, तो उनके साथ हमारे ढंग का नहीं किन्तु ऐसा सच्चा दिव्य सम्बन्ध कि जहां किसी भी प्रसंग में या परिस्थिति में आत्मीयता खंडित न हो-कर लेने की समझ हमें हो ऐसा बुद्धियोग वे अर्पित करें और शुभाशिष दें यह ही है सर्व की ओर से अभीप्सा।

आपके ही,
दादुभाई के हार्दिक जय स्वामिनारायण

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

संकल्प की बीमारी

इस प्रकार अहमदाबाद के प्रथम स्वामिनारायण मंदिर में श्री नरनारायणदेव की प्रतिष्ठा हुई। ब्राह्मणों की चोराशी करके ब्रह्मणों को मोदक से तृप्त किये। लालदास को इनके सात हजार रुपये आग्रह करके वापस दिये और कोठारी लाधा ठक्कर को 'मैं साथ में हूं' कह कर महती आत्मीयता और महान विश्वास प्रदान करके निर्भीक कर दिया।

वि.स.1978 के फाल्गुन मास की तृतीया के दिन मूर्तिप्रतिष्ठा हुई। पंचमी के दिन ब्रह्मभोज किया गया। उसी दिन महाराज ने अहमदाबाद छोड़ दिया और जेतलपुर गये। इनकी एक जीवन कथा के लेखक के शब्दों में यहाँ ''महाराज ने संकल्प की बीमारी स्वीकृत की। शरीर में बुखार था किन्तु महाराज ने दूसरे ही दिन भोजन करके वहां से शीघ्र प्रस्थान किया। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन वे गणेश धोलका नामक गाँव, पहुँचे। वहां दाहिनी ओर शुंडवाली गणपति जी की मूर्ति थी, उसके ऊपर हाथ लगाया और रायण वृक्ष के नीचे खाट बिछाकर खुल्ले में ही थोड़ा समय निर्गमन किया। वृत्तियाँ अंतर में ही खींच ली। बिमीरी धारण की और सारी प्रवृत्तियाँ मन से निकाल दी.....सर्व पदार्थों की विस्मृति कर दी तब संकल्प की बीमारी नष्ट हुई।''

इस प्रसंग के बारे में स्वयं महाराज ने वचनामृत (ग.म.22) में लिखा है वह पठनीय हैः

''हम अहमदाबाद में श्री नरनारायणदेव की प्रतिष्ठा करने गये थे तब हजारों की भीड़ जमा हुई

थी। बाद में जब श्री नरनारायण देव की प्रतिष्ठा हो गई और अहमदाबाद में ब्राह्मणों की चौराशी भोज हो गया तब हम सावधान होकर चल पड़े और जेतलपुर में जाकर रात्रि गुजारी। वहां हमने सोचा, ''जितने मनुष्य के दर्शन हुए हैं और जितनी प्रवृत्ति देखी है वह सब टाल देनी चाहिए।'' बाद में उनकी विस्मृति के कारण हृदय में अतिशय दुःख हुआ। परिणाम रूप हम बिमार हो गये। वहां से धोलका जाकर रात गुजारी; वहां से विचार करते करते कोठय की पास के गणेश धोलका के राण्य के वृक्ष के नीचे एक रात गुजारी और ऐसा सोचने लगे कि देह की स्मृति भी न रही। सोचते-सोचते सर्व प्रवृत्तियों को भूल गये। उदाहरणार्थ–हम (अहमदाबाद में) कांकरिया तालाब गये ही नहीं थे। मेला लगा ही नहीं था। वह किसी प्रकार कुछ हुआ ही नहीं था। सब कुछ स्मृति से–विचार से निकाल दिया। लौकिक जगत का नामोनिशान नहीं रहा। दृष्टि अंतर्मूखी हो गई। तब आश्चर्य दिखाई पड़ने लगा और देवता सम्बन्धी भोग हमें दिखने लगे। अनंत प्रकार के विमान, अनंत प्रकार की अप्सराएं, अनंत प्रकार के वस्त्र, अनंत प्रकार के अलंकार–यहां मृत्युलोक में है वैसा ही दिख पड़े। किन्तु हमारे अन्तर में केवल भगवान थे। ये सब अच्छा नहीं लगा। यहां के पंच विषय हमें जैसे तुच्छ लगता है वैसे वहां भी सब तुच्छ लगा। हमारा मन लुब्ध नहीं हुआ। देवलोक, ब्रह्मलोक पर्यंत कहीं भी हमारा मन लुब्ध नहीं हुआ।

वह देख कर देवगण हमारी प्रशंसा करने लगे कि आप निश्चित भगवान के एकांतिक भक्त हैं क्योंकि आपका मन भगवान को छोड़कर कहीं भी लुब्ध नहीं होता है। उनके वचन सुनकर हमारी हिम्मत बढ़ी और हमने मन को कहा कि तेरा जैसा रूप है उसको हम पहचानते हैं। यदि भगवान के अतिरिक्त दूसरा किसी भी प्रकार का विचार किया तो मैं तुझे तोड़कर चूर-चूर कर दूंगा और बुद्धि को कहा कि यदि भगवान को छोड़कर दूसरा निश्चय किया तो तेरी खैर नहीं है। चित्त को भी कह दिया कि भगवान से अन्य किसी बात का चिंतन करेगा तो तुझे भी तोड़-मरोड़ दूंगा और अहंकार को कहा कि भगवान के दासत्व के अलावा किसी भी प्रकार का अभिमान करेगा तो तेरा नाश कर दूँगा। बाद में जैसे इह लोक में पदार्थों की अत्यंत विस्मृति की भी इसी प्रकार देवलोक-ब्रह्मलोक पर्यंत के पदार्थों की थी अत्यंत विस्मृति हो गई। और जब ये सब संकल्प छूट गये तब संकल्प की जो बिमारी थी वह भी नष्ट हो गई। इस प्रकार भगवान के हर भक्त को वर्तन करना चाहिए।'' वास्तव में श्रीजी महाराज ने अपना वृत्तांत भक्तजनों के कल्याण के लिए ही कहा है। वे तो साक्षात् श्रीकृष्ण पुरुषोत्तमनारायण ही है।

यह प्रसंग सामान्य नहीं है। इस प्रसंग द्वारा महाराज ने स्पष्ट किया है कि एकान्तिक भक्तों को अपने द्वारा की गई अत्यंत सात्त्विक प्रवृत्तियों का लेप भी नहीं लगना चाहिए। अहमदाबाद में बड़ा जुलूस निकला, श्री नरनारायण देव की प्रतिष्ठा की। ब्राह्मण भोजन हुआ। हजारों की भीड़ हुई। किन्तु इस चित्र की रील भी यदि चित्त पर चलती रहेगी तो कुछ नहीं तो सात्त्विक राग का भी विकार तो पैदा होगा। कार्य, धर्मकार्य–सात्त्विक कार्य–सेवा कार्य प्रभुकार्य किया तो बहुत अच्छा किया, किन्तु इसको शरीर (इन्द्रियां), मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार में कहीं भी एक क्षण भी चलते रहने देने से महती हानि होगी। मनुष्य लोक, देवलोक, ब्रह्मलोक के दृष्य अत्यंत उज्ज्वल हो तब भी मन के परदे पर उसकी छवि कहीं भी नहीं पड़नी चाहिए। वह तो भगवान के लिये आरक्षित ही रखना है; भगवत्कार्य भी नहीं केवल भगवान ! तब ही भगवद्गीता का वचन ''न कर्म लिप्यते नरे''–सार्थक होगा। भगवतकार्य हुआ किन्तु महाराज ने गणेश धोलका पहुँच कर उसकी विस्मृति कर दी और फिर आत्मस्थ हो गये। तुरन्त संकल्प

नष्ट हो गया, बिमारी नष्ट हो गई। जैसा कि आगे कहा—महाराज की तो यह लीला थी; किन्तु एकान्तिक भक्तों के लिये यह लीला भी मार्मिक उपदेश है। यहाँ हमें पहुंचना है। यह है गीता की ब्राह्मीस्थितिः

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ, नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्थामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिवार्णमृच्छति।।

हमें जानना चाहिए-यह सब भगवान का कार्य है, भगवान करते हैं। बीच में हमारा अंहकार क्यों आए? महाराज ने अनेक कृतित्व से स्पष्ट किया है कि जब भगवान का कार्य करो तब समग्र असितत्व का समर्पण करके करो—पूरे लगाव से करो किन्तु जैसा ही कार्य पूर्ण हुआ, बाहर निकल जाओ और पूर्ण पुरुषोत्तममय बन जाओ। प्रथम पूर्णरूप से तद्रूप होना और बाद में पूर्ण रूप से तटस्थ बन जाना यह एक विचित्र विरोधामास लगता है, किन्तु भगवान की एकान्तिकी भक्ति हृदय में हो तो यह भी साध्य है।

तद्रू पता और तटस्थता

गढ़डा में मंदिर निर्माण हो रहा था उस समय का प्रसंग लीजिए। महाराज इतने तद्रूप थे कि हर कार्य की संभाल स्वयं लेते थे। स्वयं श्रम कार्य करते थे। उन्होंने संतो, हरिभक्तों सबको श्रम कार्य में जोड़ दिया था। आज्ञा थी कि सुबह-शाम नदी से स्नान कर के सब वापस लौटे तब नींव में डालने को निश्चित एक एक पत्थर उठा कर लायें। यह आज्ञा का पालन महाराज ने खुद भी किया था। वे भी सुबह-शाम अपने सर पर एक पत्थर उठा कर ले आते थे। भगवान का मंदिर और स्वयं भगवान इसका निर्माण के लिये श्रम करें ऐसा उदाहरण जक्त के धार्मिक इतिहास में विरल नहीं एकमात्र है। महाराज की भगवत्ता आत्मीयता में थी, समानता में थी, बंधुत्व में थी। भगवान का कोई भी कार्य छोटा बड़ा नहीं, समान महत्त्व का है। इस तथ्य को यह श्रमयज्ञ उजागर करता है। तद्रूपता और सन्निष्ठा का यह ज्वलंत उदाहरण है और तटस्थता का भी। ये दोनों प्रसंग द्वारा कहने का तात्पर्य यह है कि मन्दिर निर्माण प्रवृत्ति भी महाराज की मनुष्य निर्माण प्रवृत्ति थी।

भक्ति अर्थात् सर्वस्व का समर्पण

गढडा में गोपीनाथ जी का मंदिर निर्माण चल रहा था। महाराज गद्दी-तकिये पर बिराजमान थे। फंड में लोक स्वयं अपनी शक्ति अनुसार रकम दे रहे थे—1000, 5000 आदि। महाराज के मुख कमल पर मंदस्मित खेल रहा था। इतने में एक दीनहीन ब्राह्मण वहां आ पहुंचा। नाम था दूबली भट्ट। इन्होंने आकर देखा की सभा में बड़े-बड़े काठी राजा बैठे थे। ''यहां से चला जाऊँ''—मन ने सोचा। किन्तु फिर विचार आया, ''नहीं, बेइज्जती होने वाली होगी तो होकर रहेगी किन्तु भगवान का मन्दिर बन रहा है, मुझे कुछ देना ही चाहिए। ऐसा पुण्य का प्रसंग बार-बार नहीं आता है। पर तू देगा क्या? तेरे पास तो कुछ भी नहीं है। केवल तेरह पैसे है। हां, वह दे दे।'' सोच कर दो पग आगे लिया। किन्तु क्षोभ के कारण फिर पग वापस ले लिया। सभा में भारी भीड़ थी। कैसे आगे बढ़े? महाराज सब कुछ देख रहे थे। इन्होंने भीड़ को इशारा किया और भट्टजी के लिये मार्ग हो गया। भट्टजी आगे बढ़े, किन्तु क्षोभ असीम था। महाराज के पास पहुँचते ही भट्टजी महाराज के चरण कमलों में गिर पड़े। महाराज ने उनको उठाया और गले से लगाया। प्रेमाश्रु का पारावार भट्टजी की आंखों से निकल पड़ा। सर पर से पगड़ी उतार करके गांठ छोड़ी। एक पैसा निकला। महाराज को दे दिया। महाराज ने प्रेम से स्वीकार किया। दूसरी गांठ और दूसरा पैसा। वह भी महाराज ने स्वीकार किया। इस प्रकार तेरह गांठ छूटी, तेरह पैसे निकले और सब देकर भट्टजी ने कहा, ''महाराज ! इतना ही है, गोपीनाथ जी की सेवा में इतना ही दे सकता हूँ।''

महाराज ने मना किया क्योंकि महाराज ने उनकी

दरिद्रता देख ली थी। किन्तु दरिद्रनारायण देने के लिये उत्सुक थे। इनको तो जो कुछ था वह जन्म सफल करने के लिये दे ही देना था। महाराज उनकी भावना समझ गये और उनकी इच्छा मान्य रखी और अत्यंत प्रसन्न होकर कहाः ''बोलो, गोपीनाथ महाराज की जय।'' सभी ने प्रतिघोष कियाः ''गोपीनाथ महाराज की जय !''

एक ओर भावना के भूखे स्वयं नारायण और दूसरी ओर समर्पण का सागर दरिद्रनारायण। दो नारायण के भावमूलक मिलन देवों के लिए भी दुर्लभ दृश्य था। काठी राजा सोच में पड़ गयेः 'हमने रुपये की थैलियां खोल दी तब नहीं किन्तु जब यह भिक्षुक दूबली ब्राह्मण ने तेरह पैसे दिये तब महाराज ने 'जय' बुलवाई ! सुरा खाचर ने तो हिम्मत करके महाराज को पूछ भी लियाः

''महाराज यह 'जय' किस बात की?

महाराज ने उत्तर दियाः

''मंदिर का निर्माण अब हो गया, अधिक मांगना नहीं पड़ेगा।''

''ओहो ! ऐसा क्या भट्टजी ने दे दिया महाराज?'' ''तेरह पैसे !''

''यह तेरह पैसे से मंदिर निर्माण हो गया?''

''हाँ ! आप सबने थैलियां भर करके पैसा दिया है, किन्तु ऐसी अनेक थैलियां घर में भी रखी है मगर इस भगत के पास नहीं है घर, नहीं है खेत और पहनने के कपड़े भी नहीं है। कुल मिलाकर उनकी संपत्ति ''तेरह पैसे'' की थी और ये सारे पैसे इन्होंने भगवान की सेवा में समर्पित कर दिये। आपने तो सब सलामत रखके कुछ दिया। इन्होंने सब कुछ दे दिया ! भगवान में भरोसा किसका अधिक? आप भूल गये कि सब के कर्ताहर्ता भगवान ही है।''

काठी राजा महाराज की मर्मवाणी समझ गये।

वास्तव में महाराज यह सब लीला इसलिए करते थे कि अपने आत्मीय भक्तों को समर्पण का बोध हो जाए। सर्वस्व समर्पण बिना भक्ति सार्थक नहीं है। प्रेम और श्रद्धा का पात्र मिल जाय इसके बाद उस पात्र को–भगवान को सब समर्पित नहीं करते हो तब तक भक्ति संपूर्ण नहीं है। निश्चित यह श्रद्धा की कमी है। कहने का तात्पर्य यह है कि महाराज के वल मन्दिर निर्माण नहीं करते थे, भक्तों के हृदय निर्माण भी करते थे। चार मूर्तियाँ बिछा दी और उच्च महालय खड़ा कर दिया वह मन्दिर नहीं है। जब तक वहां भक्तों की भक्ति की सुगन्ध नहीं पैदा होती है तब तक वह मन्दिर नाम के लायक नहीं है। महाराज असल मन्दिर बनाना चाहते थे। भगवान के साथ इतनी तद्रूपता न हो और बाद में जो किया इसके बारे में तटस्थ न बन जाओ तब तक भक्ति पूर्ण भक्ति नहीं है। मन्दिर रचना के माध्यम से महाराज केवल भगवान की साथ तदाकार बनने की कला (technique) सिखा रहे थे।

सर्वस्व समर्पण द्वारा अक्षरधाम का दर्शन

गढडा मन्दिर निर्माण के समय का ऐसा भी एक अन्य उदाहरण है।

स्वामिनारायण महामंत्र का जाप हो रहा था और गढ़डा मन्दिर का निर्माण भी हो रहा था। एक दिन एक किसान महाराज के दर्शन के लिये आया। बढ़ई आदि को पैसा देना था। कुछ कम पड़ रहे थे महाराज ने दर्शनाभिलाषी किसान को कहाः

''सामत पटेल, तुम कुछ दे सकते हो !''

''जी महाराज, ले आऊं'' कह कर वह उठ कर खड़े हुए और गांव की ओर चल पड़े। बहुत दिनों से उस किसान के मन में एक संकल्प चल रहा था कि महाराज मुझे कुछ सेवा करने का मौका दे। आज यह प्रसंग आया। किसान के घर में केवल पन्द्रह रुपये थे। ''क्या कर सकता हूँ?'' वह सोचने लगे। सोचा, ''खेत बेच दूँ।'' खेत बेच दिया। फिर सोचा, ''कि अब खेत तो है ही नहीं, बैल की क्या आवश्यकता?'' चार बैल थे वे भी बेच दिये। ''बैल के

बिना हल की, बैलगाड़ी की भी क्या आवश्यकता?'' वे भी बेच दिये ! ढेर रुपये हो गये। किन्तु महाराज को देने के लिये तो अत्यंत स्वल्प ! चार भैंस थी, वे भी बेच दी। कुल मिलाकर उस जमाने में चार हजार रुपये इकट्ठे हो गये। किसान हर्षान्विति हो गया और चार हजार रुपये का थैला महाराज के चरण कमलों में रख दिया। जगदाधार सब कुछ जानते थे तब भी पूछाः

''मैंने तो तुमको कु छ रुपये के लिये कहा था।''

''महाराज यह कु छ ही है। केवल चार हजार ही है, ज्यादा नहीं है।''

''चार हजार ! कहां से लाये इतने रुपये?''

''घर से ही लाया हूँ महाराज ! किसी के पास से मांग कर नहीं लाया हूँ।''

महाराज सब कुछ जानते थे किन्तु उपस्थित सब को सर्वस्व समर्पण की दीक्षा मिले इसके लिये कहाः

''रुपये कहां से लाये यह तो कहना ही पड़ेगा। किसान के घर में धान्य होता है। किन्तु नगद रुपये नहीं होते हैं। अतः पूरी सत्य कथा कहो जैसे सब सुन सकें।''

किसान ने कहाः

''महाराज ! वर्षों से संकल्प था कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ। पहली बार आपने यह मौका दिया। मैं धन्य बन गया। खेत बेच दिया, बैल बेच दिये, हल और बैलगाड़ी बेच दिये.. अन्त में चार भैंस बेच दी...चार हजार रुपये मिले....यह आपकी सेवा में है। कृपा करके स्वीकार कीजिए।'' सब स्तब्ध हो गये।

महाराज के चेहरे पर मंद स्मित लहरा उठा और कहाः

''देखो, सामत पटेल की सेवा करने की रीति?'' और फिर मुक्तानंदस्वामी की ओर दृष्टिपात करके कहाः

स्वामी, कहिए, सामत पटेल अक्षरधाम से कितने दूर?'' अक्षरधाम' शब्द सुनते ही पटेल को समाधि लग गई ! अक्षरधाम का और महाराज का दर्शन हुआ। जब पटेल समाधि से जागृत हुए तब महाराज ने कहाः

''पटेल, मेरी एक बात मानोगे?''

''आज्ञा महाराज।''

''इसमें से केवल एक हजार रुपये यहां छोड़ दो। शेष तीन हजार रुपये वापस ले लीजिए और खेत, बैल, हल आदि खरीद कर पूर्ववत् व्यवसाय प्रारंभ कीजिए। सुखी होईए।''

रुपये वापस लेना ही पड़ा। सब ''धन्य धन्य महाराज !' कहने लगे। महाराज तो ऐश्वर्य के मालिक हैं। ऐसी लीला केवल सर्वस्व समर्पण की भावना की जागृति के लिये ही करते थे। और अक्षरधाम का दर्शन करवा कर भक्त को धन्य करते थे। धन्य हो महाराज !

Faith & Reason

Modern researchers in various fields of science have come to the conclusion that the age of human race is of the order of 5,85,000 years. Human life solely evolved from lower animal form and mind originated and developed from animal and ape species possessing instinctive elements such as sex, fear, self-preservation and ego sense, but life as it is advanced now is not governed by emotion only. The mind-stuff has awakened in two ways and possesses and added function. There is the Vyakta and Avyakta aspects of our mind, the external and the internal. Because of this, awakening mind refuses to accept anything for which a reasonable explantion can not be given. All

religions, Jainism, Buddhism, Hinduism, Christanity-which originated in true spirit with the messages of love, harmony, unity and peace as propagated by the original Spiritual Masters have now lost their significance, effectiveness, certainty and the possibility of producing the fruits even after one has followed the prescribed practices and rituals. In those days, people had implicit faith in the Sadguru and this faith worked out magnificent results and produced immediate fruits. A disciple who went to a Rishi troubled by some problem overcome those problems by chanting and glorifying the name of God in accordance with the Sadguru's advice. It was this unshakeable faith and also the congenial Satvik atmosphere of those days that helped him with the blessings of the Guru to achieve his desired results.

It has now radically changed. It is difficult to come by a Supermely Realised Sadguru and it is equally difficult to find in a disciple that kind of unflinching faith in this exciting and disturbing age. Everywhere, the working of the unrefined nature of man and his mind is clouded by nesience that interferes with the smooth passage of spiritual life. The Vedic and Vaishnava acharas no longer exist with same potentiality and authenticity. Consequently, Yagnas and Mantras are proving ineffective. It is for this reason that in the Mahanirvana Tantra Shiva declared that Tantra System is for the benefit of the kali age.

It will always remain powerful, certain and effective even with the development of science and technology. Westerners will certainly appreciate and accept it for it is based on experiments and experiences. It will surely appeal to a rationalist mind. The faith is the foundations; the self surrendering is the main base, the understanding or reason is the motive poser. The Real Tantra reconciles faith and reason with a technique in judicious manner which results into potenitial force and power of consciousness culminating in supramental consciousness, vision and Sacchidanand Realisation. This will be a new religion for the coming age both for East and the West. Here, full expression is given to all out instincts, but actually based on our understanding and full awareness of their motives and carried our under the specific guidance of the Master. We are actually going to the original source of thought, eucmotions, instincts and all sorts of activities arising for, the heart, mind and chitt. The human being, right from animal stage has run its life in the wrong direction. The spiritual master of this age has to show the right way and right direction for the right cause enabling the human being to enjoy this life in multifarious activities and at the same time may have the knowledge of Brahman for the liberation from the bondages of desires or vasana and ego sense. The reason and faith with trust in God under the guidance of Supermely Realised Spiritual Master will certainly pave the way for the bright future of mankind, if this "Sant Marg" is accepted and adopted in its totality.

Aspiration, introspection, initation with living mantra and master, meditation-Swaroopyog and prayers are the new techniques based on total awareness which are adopted by Tantriks of this age.

From: The Real Essence of Tantra

❄ ❄ ❄

'Let this new Deepawali enlighten you and the new year awaken you'.

Life is a struggle, a precious boon and a continuous flow of energy. One can live it and enjoy it gracefully by giving out or offering something to God in the form of serving the society. The real beauty and peace resides in hormony, love and compassion amongst one's fellowmen and it is base on right understanding and correct thinking. There have been various ways, means and paths. The easiest and simplest path is the path of creative surrender to the realised soul or spiritual master.

My Lord Swaminarayan and Yogiji Maharaj bless you and your family members for the Divine vision, intense aspiration and Divine action in this life.

The New year's motto should therefore be 'Friendliness is Godliness." Therefore remain prayful to the Divine power in the morning and in the evening.

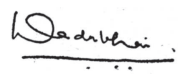

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	20.10.79	शनिवार	शारदापूजन,दीपावली
2.	दि.	21.10.79	रविवार	अन्नकूट उत्सव
3.	दि.	22.10.79	सोमवार	नूतनवर्ष संवत् 2036
4.	दि.	23.10.79	मंगलवार	भैयादूज
5.	दि.	26.10.79	शुक्रवार	लाभपंचमी
6.	दि.	29.10.79	सोमवार	नवमी, श्री स्वामिनारायण जयंती
7.	दि.	30.10.79	बुधवार	प्रबोधिनी एकादशी, निर्जला व्रत
8.	दि.	4.11.79	रविवार	कार्तिकी पूर्णिमा, तुलसी विवाह
9.	दि.	15.11.79	गुरुवार	एकादशी, व्रत

साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदास जी द्वारा योगी डिवाईन सोसाईटी,
ए-103, अशोक विहार-III, दिल्ली-110052 फोनः 711838
मुद्रण स्थानः ठक्कर प्रिंटिंग प्रेस, 2588, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली-110007